PHILOSOPHY Hons, Paper I (Part-I)

सत्कार्यवाद (सांख्य)

Dr. S. K. Singh
Mob.-9431464995

→ सांख्य दर्शन भारतीय दर्शन के प्राचीनतम सम्प्रदायों में परिगणित है। महर्षि कपिल इस दर्शन के प्रतिष्ठापक हैं।

→ सत्कार्यवाद यह कारण-कार्य सिद्धांत है। ~~इसके अनुसार~~ सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य उत्पत्तिपूर्व भी सत् है। कार्य कारण में बीजरूप से अन्तर्निहित रहता है तथा कारण कार्य में स्वभाव रूप से विद्यमान रहता है। कारण से कार्य के उत्पत्ति का अर्थ 'अव्यक्त से व्यक्त होना' है।

→ इस प्रकार ~~सत्कार्य~~ सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य और कारण एक ही वस्तु के विकसित और अविकसित अवस्थाएँ हैं। विकास का अर्थ छुपे हुये को प्रकाश में लाना है, अव्यक्त को व्यक्त करना है।

→ सांख्य-योग न केवल सत्कार्यवाद को मानता है (कि कार्य पहले से ही कारण में विद्यमान रहता है) बल्कि वह परिणामवाद को भी मानता है (कि कारण का कार्य में परिवर्तन वास्तविक है)।

→ न्याय-वैशेषिक के विपरीत सांख्य-योग यह मानता है कि कार्य कारण में पहले से ही बीज-रूप से विद्यमान रहता है। फिर, वह अद्वैतवाद के विपरीत मानता है कि कारण का कार्य में परिवर्तन वास्तविक है।

→ सत्कार्यवाद के आधार पर ही सांख्य यह मानता है कि संसार के सभी कार्यजात - बुद्धि से लेकर पृथ्वी पर्यंत - मूल तत्त्व प्रकृति का ही विकृति (परिणाम) है। इस प्रकार सांख्य-योग सत्कार्यवाद के आधार पर 'प्रकृति-परिणामवाद' को व्याख्यायित करता है।

→ 'प्रकृतिपरिणामवाद' के अनुसार सृष्टि के सारे तत्त्व प्रलयावस्था में बीज-रूप से (या अव्यक्त रूप में) प्रकृति के अन्तर्गत विद्यमान रहता है तथा सर्गावस्था (सृष्टि की अवस्था) में कार्यरूप से व्यक्त होता है। कारण का कार्य-रूप में यह अभिव्यक्ति वास्तविक है। कार्य और कारण में धर्म अथवा स्वरूप का ही केवल भेद है।

Scanned with CamScanner

→ सांख्य संसार के समस्त विषय के आधार पर मूल प्रकृति के अनुमान का आधार सत्कार्यवाद को ही मानता है। सत्कार्यवाद की सिद्धि के लिये वह निम्नलिखित प्रमाण देता है –

'असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाऽभावात् ।
शक्तस्य शक्य करणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥

(i) असदकरणात् (असत् से सत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती) →
यदि कार्य उत्पत्तिपूर्व कारण में विद्यमान न हो तो वह असत् (शशश्रृंग या बन्ध्यापुत्र की तरह) होगा। भगवद्गीता में भी कहा गया है – 'नासतो विद्यते भावो न भावो विद्यते सतः' अर्थात् असत् का कभी भाव नहीं होता और असत् का कभी अभाव नहीं होता।

(ii) उपादानग्रहणात् (कार्य और उपादान कारण असंपृक्त हैं) :– कार्य केवल एक नयी अभिव्यक्ति है; कार्य और उपादान कारण असंपृक्त हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। घड़ा भी मिट्टी ही होता है (यदि मिट्टी का बना हो)। कार्य (घड़ा) अपने उपादान कारण (मिट्टी) से सम्बद्ध है। कोई भी संबंध सत्पदार्थों में ही हो सकता है, सत् और असत् में संबंध नहीं हो सकता।

(iii) सर्वसंभवाऽभावात् (सभी कारण से सभी कार्य उत्पन्न नहीं हो सकते) यदि कार्य पहले से कारण में विद्यमान न हो तो किसी भी कारण से किसी भी कार्य की उत्पत्ति संभव माननी पड़ेगी।

(iv) शक्तस्य शक्यकरणात् (शक्त कारण से ही शक्य कार्य संभव है) → जो कार्य बीज रूप से जिस कारण में विद्यमान है, वही कारण उसी कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति रखता है। यदि ऐसा न हो तो पानी से दही जम जायेगा, बालू से तेल निकलेगा।

(v) कारणभावात् (कारण और कार्य एक ही वस्तु के दो रूप हैं) – कार्य और कारण में केवल व्यक्त और अव्यक्त का अन्तर है। कारण कार्य की अव्यक्तावस्था है और कार्य कारण का व्यक्त रूप है। कारण का जो स्वभाव होता है, वही स्वभाव कार्य का भी होता है। मिट्टी से बने घड़े का स्वभाव भी मिट्टी जैसा ही होता है।

→ सांख्य के मूलतत्व प्रकृति का अनुमान सत्कार्यवाद पर निर्भर है।

Scanned with CamScanner